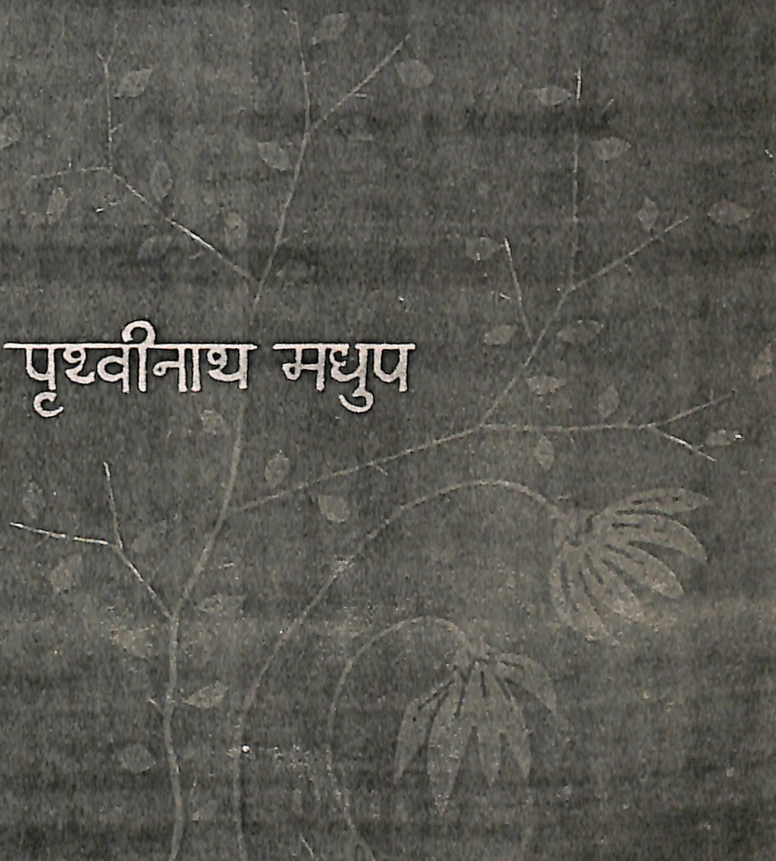
बबूल के साये में मोगरा



पृथ्वीनाथ मधुप

प्रकाशक:
जम्मू कश्मीर राष्ट्र भाषा प्रचार समिति (ज० क०

Dear Dr. Bhat ji,

I am very sorry that I could not find a copy of my poetry collection — Babool Ke Saye Men Mogra — for you. I am enclosing photo copy of some of the poems for you from the collection. Hope you will enjoy the poems and convey your reaction.

With regards,

Yours Sincerely
[signature]
(P.N. Madhup)

N.B.
A copy of Kashmir Kee Lok Kathayen is also enclosed. Pl. convey your reaction regarding the same also - Sd.

डॉ॰ भट्ट को
सस्नेह!
7/3/02

बबूल के साये में मोगरा

ऐसा नहीं कि
काँटों की चुभन का
एहसास नहीं हुआ

कई बार—
छिदा
बिंधी चेतना
काँपा
कराहा

फिर भी
महक भेजता रहा
झकोरों द्वारा
बबूल के साये में का
मोगरा !

□

आओ-2

आओ !
खून के छींटों बीच
उभरती सुर्खियों
बारूदी नारों
व दहशत भरी पुकारों की
दमघोट ऊब से
तनिक दूर ले जाकर
अपने को
चुटकी भर ताजा हवा लेने को
खुले पार्क के
उस पेड़ की छाया में
दो क्षण ही सही
उड़ान परिन्दों की
आवाज
दूब
फूल
व पत्तों के रंगों की
गरमाई
गुनगुनी किरणों की
बटोर
(एक-दूसरे के कन्धों पर
बाहें टिका)
बतियायें

कहकहे लगायें···
और बाहर आ
इन्हें बिखरायें
बिखराते जायें !!!

□

ओढ़े कागज की सफेदी

फेंक रहे
सुगन्ध के नाम पर
मुट्ठियाँ भर-भर
पुरानी जमी धूल
और
उछाल रहे
लाउडस्पीकरों से
बीमार आँख

घोल रहे भीड़ में
आदिम पशु-चरित्र
भभकों में जिसके
फड़फड़ा रहा
सामने
देश का मानचित्र

चुरा रहे
बिरवों के
फूलों की—
हंसी का रंग
हो रहीं चिन्दियाँ
कितने ही
आसमानों के
सुरचापों के अंग

दे रहे कलरव को
गूंगापन-गूंगापन
नागफनी हो रहा
वन-वन का
हर चन्दन

लहराते हवा में
बदबू के किस्से
दूब के माथे पर
शोणित के धब्बे

कोई जुम्बिश नहीं
फिर भी
आराम में कलम
ओढ़े
कागज की सफेदी।

□

चिन्ता

तुमने सुना
राम हेम-हिरण के
नुकीले सींगों से
घायल हो
छटपटा रहा

लापता है
धनुष-बाण उसका

लक्ष्मण
अग्रज की चीख से गुज़र
टस से मस न हुआ
कोई पॉप धुन गुनगुनाता
कूल्हे मटकाता
बिना खींचे रेखा
कहीं निकल गया

रावण
ओढ़ सज्जनता
मौका पा
सीता को
उठा ले गया
नहीं करना पड़ा
उसे

सामना
किसी भी जटायू का
(अव्वल
आजकल
जटायू मिलते भी कहाँ)

किस रिण्यमूक पर
गिरायेगी
पट अपना
अब सीता
यही है चिन्ता !!

नये साल से

आओ !
गये सालों की
समूची पशुता के खिलाफ़
हाथों का
साथ दो

काँटों-छिदी
रक्त-सनी
उंगलियों का
मरहम हो
इनकी
वसन्त बुनने में
मदद करो

आओ !!
पके कानों
और
दुखती आँखों को
कोरी लफ्फाज़ी
व
चमकीले रंगों की
चालबाज़ी से
बचाओ

कुछ ऐसा गाओ
कि हर तार
झनझना
बने राग
बुझे
सीनों में सुलगती आग
लहकें
खेत-दर-खेत
प्यार
बार-बार !!!

□

यथार्थ

वह
जिसने

तुम्हारी फुलवारी के
सारे के सारे
पौधों की जड़ों में
कैंची मारी
गला घोंट दिया
खुशबुओं का
जनम से पहले

वह
जिसने
प्यारी तितलियों
पंख रंगबिरंगे
कुतर डाले
घोल दी रात
भोर-गुलाल-घुली
छोटी-सी तलैया में...

तुम्हारी आँखों में
आग है
चेहरे पर
तमतमाहट

मुट्ठियों में
घूँसे…
(उसके लिये)
जो तुम सिर्फ
काग़ज़ में लगाते हो
काग़ज़ को दिखाते हो
काग़ज़ को मारते हो !!!

□

षड्यन्त्र

बहुत उदास है
चिनार की घनी छाया
पत्ते
षड्यन्त्र रच रहे
जड़ों को उखाड़ने का !

□

भविष्य-चिन्तन

ऐसा नहीं कि
मेरे सीने में
नहीं उतारता
जंग लगा खंजर
सिसकता
बेसहारा बुढ़ापा
अनाथ बचपन
सूनी
माँग की व्यथा
मेरी
यह विवशता :
गोलियों के घावों की टीस
व बारूदी धुएँ की कड़ुवाहट से
घुट-घुट
यदि
आँसुओं के
बाँध ही तोड़ता रहूँ
तो
इस टटके मातृत्व की
गोद की
ममता का
क्या होगा ?

वह : तीन क्षणिकाएँ

•

मैले पन्ने पर
राहत रजिस्टर के
मात्र हिज्जे
एक नाम के

•

मेरे अन्दर
कभी बाँसुरी
और कभी जलतरंग बजाने वाला
वह
अब
कैक्टस-थूहर के
जंगल उगाता

•

तार-तार तम्बू के
भुरभुराये खूँटे की
मौसम की मार से
बुढ़ाई
रस्सी की पकड़-सा
वह खड़ा

□

शायद

ठीक है
कि बह रही
रक्त की धार
लगातार
मेरे सीने के
आरपार के
इन जख्मों से

कराह तक
मूक हुई
मर गई
आह भी
पथरा गये
शब्द
जबान पर ही

क्या पता
मेरा यह 'मैं'
रहे न रहे !

पर, जानता हूँ
(न लेना/अन्यथा)
ठीक हुआ
मेरे वक्ष को लक्ष्य बना

दाग़ी गईं गोलियाँ
सब हुआ
धुआँ-धुआँ
जिसमें
खो गई
मेरे घर
गाँव की
गन्ध
व पगडंडियाँ

शायद अब
त्यागुँगा निद्रा
पिनक से बाहर आ
समेट निज को
वरूँगा
वास्तविकता !
वास्तविकता !! □

अब जायँ कहां ?

खुशबूसनी हवाएँ बहती
हर सिम्मत से अब न यहाँ !
घुटन बांटती हर सिम्मत अब
हर सिम्मत अब धुआँ-धुआँ !

फरहत, प्यार
सींचता हर क्षण
ऐसा था अपना पानी
इसमें क्या घुल गया
कि अब यह
पागलपन-उन्माद बना !

यह किसने
सुलगाई ज्वाला
छाँह चिनारी
झुलस रही !
सुमन जल रहे
डाल जल रही
नीड़ जल रहा
बुलबुल का !

मिले हमें थे
विरसे में जो
जिनको हमने
सदा जिया

संजीवनी शब्द वे
हमने
बतलाओ खो दिए कहाँ ?
दिल में शत-शत घाव लिये
औ' हूक लिये
अवसाद लिये
'मधुप' व्यथित हो
सोच रहा है
जाएँ तो
अब जाएँ कहाँ ?

□

हादसे-दर-हादसे

अब
न बुलबुल और कोयल
काग में
हैं दीखते
अब यहां
जल्वे फ़क़त हैं
गिद्ध के औ' बाज़ के !

नग्माज़न हैं
अब न झरने
सहमें-सहमें देवदार
दरमियाँ
कलियों बहारों के
बड़े हैं फासले !

रंग वो
खुशबू वो
मौसम वो
न जाने अब कहां
फलक तक को
घुटन दी
बेइन्तिहा
बारूद ने !

खुशकलामी
कहकहे
अपनाया
और वे वलवले
हाय
सारे हो गए हैं
हादसे-दर-हादसे !

राज
अंधियारे का है
बस
उल्लुओं के ऐश हैं
अब न लगता है
यहाँ पर
जगमगाते प्रात थे ! □

क्या उत्तर दूँ ?

केसर-कुसमों से गंधाते
अम्बरी सेबों जैसे
विशाल चिनार की
छाया से
दिनों पर
बैठ गया
कुण्डली मार कर
काला अजगर
कहाँ से आकर
—पूछ रहे
'लल', [illegible] ऋषि के वाख
रह रहकर चुप हूँ
क्या उत्तर दूँ !